ओ३म्



सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

समुल्लास 10 पर आधारित

क्या चौके चूल्हे में धर्म है ?

प्रकाशक : आर्य समाज, अजमेर मूल्य 3.00

Scanned with CamScanner

प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले (आर्य) द्वारा संपादित सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के 15 पुष्प

भाग	नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	ईश्वर एक नाम अनेक	प्रो. बुद्धि प्रकाश आर्य	3.00
2.	आदर्श माता–पिता	प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु	3.00
3.	शिक्षा और चरित्र निर्माण	प्रो. भूदेव शास्त्री	4.00
4.	गृहस्थाश्रम का महत्त्व	आचार्य ओंकार मिश्र प्रणव	3.00
5.	संन्यासी कौन और कैसे हो ?	रासासिंह विद्यावाचस्पति	3.00
6.	राज्य व्यवस्था	प्रो. प्रशान्त कुमार वेदालंकार	5.50
7.	ईश्वर और वेद	डॉ. सूर्यदेव शर्मा, डी. लिट्	4.00
8.	जगत् की उत्पत्ति	डा. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	4.00
9.	स्वर्ग और नरक कहाँ है ?	पं. यशपाल, आर्य बन्धु	4.00
10.	क्या चौके चूल्हे में धर्म है ?	प्रो. देव शर्मा वेदालंकार	3.00
11.	हिन्दू धर्म की निर्बलता	प्रो. भवानीलाल भारतीय	4.00
12.	बौद्ध और जैन मत	पं. मंजुनाथ शास्त्री	3.00
13.	वेद और ईसाई मत	श्री रामस्वरूपजी रक्षक	3.00
14.	इस्लाम और वैदिक धर्म	डा. श्रीराम आर्य	4.00
15.	सत्य का अर्थ तथा प्रकाश	प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले	3.00

आचार्य दत्तात्रेय जी आर्य द्वारा लिखित पुस्तकें

1.	आचार संहिता	1.00
2.	आर्य समाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं	50.00
3.	हमारी राष्ट्रीयता का आधार	2.00
4.	देश धर्म और हिन्दू समाज को आर्य समाज की देन	1.00
5.	मेरी तीसरी विदेश यात्रा के संस्मरण	6.00
6.	आर्य शिक्षण संस्थाओं का भविष्य	5.00
7.	दा आर्यसमाज (The Arya Samaj)	2.00
8.	आर्य शिक्षण संस्थाओं की परिचय निर्देशिका	12.00
9.	आर्य समाज का वर्तमान और भविष्य	10.00
10.	The Arya Samaj Hindu without Hinduism	125.00
11.	आर्य समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता	8.00
12.	कर्मवीर पं. जियालाल का संक्षिप्त जीवन चरित्र	5.00

अन्य प्रकाशन

1.	आर्य समाज अजमेर का इतिहास	50.00
2.	सांस्कृतिक कार्यक्रम पथ दर्शिका	30.00
3.	अजमेर की आर्य शिक्षण संस्थायें	3.00
4.	धर्म शिक्षा (भाग 1 से 11 तक) सैट (20% कमीशन)	100.00
5.	सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ माला (सैट) (20% कमीशन)	20.00

प्राप्ति स्थान **आर्य समाज, अजमेर**

Scanned with CamScanner

ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला—भाग १०

क्या चौके चूल्हे में धर्म है ?

लेखक :

डॉ. देव शर्मा वेदालंकार

दयानन्द कॉलेज, अजमेर

सम्पादक :

दत्तात्रेय (वाब्ले) आर्य

पू. प्रिंसिपल, दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज, अजमेर

प्रकाशक : **आर्य समाज, अजमेर**

चतुर्थ संस्करण

चतुर्थ संस्करण वर्ष 1999 | प्रतियाँ 2000 | मूल्य : 3.30 पैसे

Scanned with CamScanner

डॉ. सूर्यदेव शर्मा

आर्य समाज के जाने माने विद्वान् और प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री तथा आर्य समाज अजमेर के दीर्घ कालीन यशस्वी मंत्री स्व. डॉ. सूर्यदेव शर्मा, शास्त्री, साहित्यालंकार, एम. ए., एल. टी. डी. लिट् ने 1981 में सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी के अवसर पर इस ग्रन्थ माला के प्रथम संस्करण के लिये 12 हजार रुपये तथा आर्यसमाज अजमेर की 1982 में शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित द्वितीय संस्करण के लिए 10 हजार रुपये,इस प्रकार कुल 22 हजार (बाईस हजार रुपये) रुपये की राशि दान में देकर ऋषि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार में अनुकरणीय सहयोग दिया था। आर्य समाज अजमेर और मैं अपनी ओर से उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ ।

दत्तात्रेय (वाब्ले) आर्य
प्रधान
आर्य समाज, अजमेर

मुद्रक : श्री आर्य प्रिण्टर्स, केसर गंज, अजमेर
दूरभाष : 431464, 424850

Scanned with CamScanner

प्रस्तावना

ऋषि दयानन्द के अनेक क्रान्तिकारी विचारों में से उनके व्यक्तिगत आचार–विचार तथा भक्ष्याभक्ष्य सम्बन्धी विचार भी आधुनिक भारत के लिये विशेष महत्त्व के हैं। उन्होंने हिन्दुओं की इस परम्परागत मान्यता का विरोध किया है कि खान–पान और चौके–चूल्हे के बन्धन हमारे आचार–विचार या धर्म के आवश्यक अंग है। स्वामीजी ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि छोटी–छोटी बातों से ज्यादा महत्त्व की वे बातें हैं जिन पर समाज और देश का हित निर्भर है। इस प्रकार व्यक्तिवादी हिन्दू धर्म के स्थान में उन्होंने हमें एक नवीन जीवन दर्शन दिया है जिसमें व्यक्तिगत चरित्र के साथ हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र पर भी बल दिया गया है।

भक्ष्याभक्ष्य

व्यक्ति और समाज दोनों का हित किस प्रकार एक दूसरे पर निर्भर है यह आर्य समाज के नौवें नियम में स्पष्ट किया गया है। देश और समाज को विभक्त करने वाली जात–पात का एक अन्य तर्कहीन अभिशाप खान–पान और चौके–चूल्हे सम्बन्धी बन्धन है। वस्तुतः व्यवहार में विवाह के बाद वे ही हमारी जाति–प्रथा के आधार बन गये हैं। यही कारण है कि किसी अन्य धर्मावलम्बी या छोटी समझी जाने वाली जाति के व्यक्ति का छुआ हुआ भोजन ही नहीं पानी तक पीने से हिन्दुओं की जाति और धर्म दोनों नष्ट हो जाते हैं। स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भक्ष्याभक्ष्य अर्थात् खाद्य अखाद्य पदार्थों का आचार–विचार से इतना सम्बन्ध नहीं है जितना कि उनके प्राप्त करने या खाने के पीछे मनुष्य की भावना से है।

"हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल कपट से प्राप्त पदार्थ अभक्ष्य है, और धर्मादिक कर्मों से प्राप्त कर भोजन आदि करना भक्ष्य है।" हिंसा पर आधारित होने के कारण स्वामीजी ने मांसाहार का भी निषेध किया है।

विदेश यात्रा

इसी प्रकार चौके चूल्हे की लकीर पीटने की हानियों का वर्णन करते हुये वे कहते हैं कि युद्ध आदि तक में भोजन सम्बन्धी छुआछूत में पड़कर पराजित होना आनाचार है और समयानुसार पैदल या रथ आदि पर बैठकर भी किया हुआ भोजन आचार के विरुद्ध नहीं है। हिन्दू धर्म में विदेश यात्रा का भी इसीलिये निषेध किया गया है कि वहां अन्य जाति या धर्मावलम्बियों के हाथ का भोजन आदि करना पड़ता है। स्वामीजी इस युग के पहले मनीषी थे जिन्होंने

Scanned with CamScanner

विदेशों की यात्रा का समर्थन करते हुये कहा है कि जब तक हम अन्य देशों में अपने पूर्वजों के समान नहीं जायेंगे तब तक न हम उसके साथ अपना व्यापार कर सकते हैं और न ही वहां की नवीन शिक्षा, ज्ञान और विज्ञान से लाभ उठा सकते हैं। आज भी ब्राह्मणेतर जाति के लोग भोजन बनाने के लिये ब्राह्मण रसोइये रखते हैं। स्वामीजी ने इसके ठीक विपरीत कहा है कि भोजन बनाने का कार्य ब्राह्मण का नहीं शूद्र का है और इसलिये उन्होंने शूद्र अर्थात् अनपढ़ लोगों को ही भोजन बनाने के लिये उपयुक्त माना है। इन मूर्खता पूर्ण रीति रिवाजों से स्वामीजी कितने दुखी थे इसका प्रमाण उनके निम्नलिखित विचारों से मिलता है। वे कहते हैं–"इसी मूढ़ता से यह इन लोगों में चौका लगाते–लगाते और परस्पर विरोध करते कराते देश की स्वतन्त्रता, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर भी चौका लगाकर हाथ पर हाथ धर बैठे हैं और सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा के इन्होंने सब कुछ नष्ट कर दिया है।"

आचार-अनाचार

चरित्र और आचार के सम्बन्ध में भी उसकी वर्तमान संकीर्ण कल्पना के स्थान में स्वामी जी ने उसे नैतिक और बौद्धिक आधार पर व्यापक रूप दिया है जो हमारी अभी तक की दकियानूसी मान्यता के विपरीत एक क्रांतिकारी विचार है। उनके अनुसार सत्य–भाषणादि कर्मों का आचरण करना आचार है और इसके विपरीत व्यवहार करना अनाचार है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने जितेन्द्रियता, पुरुषार्थ, सब के साथ समान और निष्पक्ष व्यवहार, देश प्रेम और परोपकार आदि गुणों को हमारे राष्ट्रीय चरित्र का आधार बनाने का उपदेश दिया है।

दत्तात्रेय (वाब्ले) आर्य

सम्पादक

लेखक का संक्षिप्त परिचय

डॉ, देव शर्मा वेदालंकार एक कर्मशील, उत्साही एवं गम्भीर लेखक हैं। आप गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के स्नातक हैं तथा निष्ठावान आर्य परिवार के सदस्य हैं। वर्तमान में दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर में संस्कृत के व्याख्याता हैं।

Scanned with CamScanner

।। ओ३म् ।।

क्या चौके चूल्हे में धर्म है ?

आज के इस बुद्धिवादी युग में भी सत्य के प्रकाश–स्तम्भ 'सत्यार्थप्रकाश' की उपयोगिता व आवश्यकता कौन व्यक्ति नहीं स्वीकार करता। पाश्चात्य सभ्यता की आंधी में भटकते मानव समूह को कल्याण के मार्ग पर चलाने की क्षमता यदि किसी एक ग्रन्थ में है तो वह 'सत्यार्थप्रकाश' है जो व्यक्ति, देश, काल, जाति और वर्ग व सम्प्रदाय–भेद से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र के योगेक्षेम की सिद्धि करने वाला है। यह ग्रन्थ न केवल धार्मिक, दार्शनिक व राजनैतिक क्षेत्र में अपितु मनुष्यों के सामान्य दैनिकचर्या में व्याप्त संकीर्णताओं, भ्रान्तियों व रूढ़ियों के विरुद्ध महान् वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करने वाला है। इस ग्रन्थ के दशम समुल्लास में इसी व्यावहारिक क्रान्ति की विवेचना की गई है।

इस समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने सर्वप्रथम वेद एवं वेदसम्मत ग्रन्थों का उदाहरण देते हुये बताया है कि–वेद का आदेश किया हुआ, स्मृतियों द्वारा निर्धारित किया हुआ तथा विद्वान् सुशील सत्पुरुषों के द्वारा अनुकरण में लाया गया कर्त्तव्य ही परम धर्म है। जिस कर्म को करते हुये आत्मा को प्रसन्नता हो, लोगों के सम्मुख करते हुये भय, शंका व लज्जा का अनुभव न हो तथा जिसके करने से न केवल अपना अपितु अन्य समस्त प्राणियों का हित होता हो–ऐसा श्रेष्ठ कर्म ही धर्म या सदाचार कहलाता है और इसके विपरीत जो वेद विरुद्ध हो, ऋषियों द्वारा निर्धारित मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाला हो, जिसके करने से आत्मा को ग्लानि, लज्जा व संकोच हो, जिससे प्राणियों को कष्ट होता हो–ऐसा दुष्कर्म

Scanned with CamScanner

अधर्म या अनाचार कहलाता है। इस आचार–अनाचार का विश्लेषण करते हुये ऋषि ने भ्रान्तिवश चली आ रही रूढ़ियों व अन्धपरम्पराओं को समाप्त करते हुये बुद्धि सम्मत स्वस्थ दिशा प्रदान की।

महर्षि दयानन्द ने आचार के मूल में आहार का विशेष महत्त्व समझते हुये बताया कि यदि हमारा आहार शुद्ध होगा तो हमारा आचार अवश्यमेव पवित्र होगा, क्योंकि पवित्र भोजन से बुद्धि शुद्ध, सात्विक बनती है और ऐसी बुद्धि में निर्मलता ही निर्मलता होने से मलिन आचरण की उत्पत्ति का अवसर ही कहाँ रह जाता है ? इसीलिये जो पदार्थ आयु, बुद्धि व स्फूर्ति बढ़ाने वाले हैं, जो हमारे स्वाभाविक भोज्य पदार्थ हैं–उनका ही सेवन करना चाहिये। और जो बुद्धि को समाप्त करने वाले हैं, रोग उत्पन्न करने वाले हैं तथा धर्मशास्त्र व वैद्यकशास्त्र के प्रतिकूल हैं–ऐसे मांस, मदिरा, अण्डे, भांग, गांजा आदि मदकारी पदार्थों से सदा बचना चाहिये, क्योंकि ऐसे अभक्ष्य पदार्थ सेवन से मनुष्य अपने स्वाभाविक धर्म (मननशीलता) से गिरकर राक्षस कोटि में पहुंच जाता है।

इसी प्रसंग में ऋषि ने इस ओर भी संकेत किया कि केवल भोजन की ही पवित्रता नहीं, अपितु उसका पाक–स्थान एवं पकाने वाले भी पवित्र होने आवश्यक है। अन्यथा व्यक्ति या स्थान की अपवित्रता से शुद्ध भोजन भी दूषित हो जायेगा। और ऐसा दूषित भोजन हमारे लिये हानिकारक हो जायेगा इसके साथ साथ भोजन की उच्छिष्टता का भी ध्यान रखना चाहिये। न तो अपना उच्छिष्ट किसी अन्य को खिलाये और न किसी अन्य का उच्छिष्ट स्वयं खाये। इससे रोग–संक्रमण की आशंका रहती है। इस प्रकार इस समुल्लास में मुख्यता आचार, अनाचार एवं भक्ष्य, अभक्ष्य–इनका ही सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। यही इस समुल्लास का संक्षिप्त सार है, जिसका क्रमशः विवेचन निम्न रूप से है–

Scanned with CamScanner

सदाचार और अनाचार

सदाचार मानव जीवन का एक सुवासित सुमन होता है जिसकी सुगन्ध से उसके आसपास का वातावरण सुगन्धित एवं रमणिक बन जाता है। उस व्यक्ति की फैलती सुगन्धि से समाज के लोग स्वतः आकर्षित होने लगते हैं। यदि हम किसी की बुद्धि को प्रभावित करना चाहते हैं तो उसके लिये विद्वत्ता की आवश्यकता होती है। यदि हम किसी के नेत्रों को सुख प्रदान करना चाहतें हैं तो रूप सौन्दर्य या विपुल सम्पदा का दर्शन कराते हैं। लेकिन यदि हम हृदय जीतना चाहते हैं तो उसके लिये श्रेष्ठ–आचरण ही सर्वोत्तम साधन है। सदाचारी व्यक्ति के हृदय की पवित्रता व प्रसन्नता उसके मुखमण्डल में प्रतिविम्बित होने लगती है। सहज ओज से उसका वदन देदीप्यमान होने लगता है; जबकि दुराचारी, छली, स्वार्थी व्यक्ति के मुख में उसके हृदय की कालिमा की छाया दिखाई देती है। लोग स्वतः उससे दूर ही दूर होते चले जाते हैं। ऐसा आचारवान् व्यक्ति अवसर आने पर बड़े से बड़े प्रलोभनों व बड़े बड़े ऐन्द्रिय सुखों में भी कभी नहीं फंसता। वह इन्द्रियों का दास नहीं, स्वामी होता है और अपनी इच्छानुसार इन्द्रियों को धर्म–कार्यों में प्रवृत्त कर मनोरथों को पूर्ण करता है।

यहाँ जिज्ञासा होती है कि आखिर सदाचार है क्या ? जिसके पालन से मानव अपनी कामनाओं का दोहन किया करता है। इसका निराकरण करते हुये ऋषि दयानन्द लिखते हैं–"माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस–जिस कर्म से जगत् का उपकार हो वह–वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, चोर, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करें। आप जो सत्यवादी, धर्मात्मा परोपकारप्रिय

Scanned with CamScanner

जन हैं उनका सदा संग करने का ही नाम श्रेष्ठाचार है"। अपनी इस मान्यता को पुष्टि प्रदान करने के निमित्त महर्षि ने मनु के अनेकानेक श्लोकों का उदाहरण देते हुये बताया है कि–सदाचार निर्णय के लिये वेद ही परम प्रमाण है। अतः सम्पूर्ण वेद, वेदानुकूल धर्मशास्त्र, सत्पुरुषों का आचरण एवं जिस कार्य से आत्मा प्रसन्न हो–ऐसे आत्मानुकूल कार्य करने चाहिये। आत्मा के सन्तोष का अभिप्राय यह है कि जिस कर्म को करते समय हमें भय, शंका व लज्जा न हो बल्कि उस कार्य को करने में प्रसन्नता व उत्साह हो उसे धर्म या सदाचार समझना चाहिये। आत्मा की आवाज परमपिता परमात्मा की वाणी समझी जाती है जो मनुष्य को अधर्म और अनाचार से बचने तथा सदाचार में प्रवत्त होने की प्रेरणा देती है।

ईशोपनिषद् में भी इसी सत्य का प्रतिपादन किया गया है कि जो व्यक्ति आत्मा के विरुद्ध कार्य करता है वह मानो आत्महनन करता है और ऐसा आत्महन्ता पुरुष 'असूर्य' नामक घोर नरक को प्राप्त होता है। यदि हम संक्षेप में पाप–पुण्य का भेद करें तो यही है कि **जिन कार्यों के करते समय हर्ष व आनन्द हो वह पुण्य है और जिन कार्यों में संकोच व ग्लानि हो वह पाप है।**

आत्मा के अनुकूल चलने वाला सत्यनिष्ठ व्यक्ति अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी तर्क या युक्ति पर कान नहीं देता। उसका आचरण आत्मा के अनुकूल धर्म के साँचे में ढलते रहने से दिव्य ज्योति से प्रकाशमान रहता है और वह छोटी से छोटी बुराई के प्रति सावधान रहता है।

इस सदाचार के ज्ञान का अधिकारी वही होता है जो अर्थ और काम के बन्धनों से मुक्त रहता है। विषयोन्मुख इन्द्रियों को संयमित कर जैसे कोई सारथी अश्वों को विपरीत मार्ग से हटाकर सही मार्ग में चलाता है उसी प्रकार धर्म के मार्ग पर प्रवृत्त करने वाला होता

Scanned with CamScanner

है। ऐसा सदाचारी पुरुष अपने शरीर, अपने वस्त्र, अपने निवास स्थान तथा अपना आहार विहार स्वच्छ पवित्र रखते हुये चित्त की शुद्धि एवं आरोग्य की प्राप्ति करने वाला होता है।

इस सदाचार के विपरीत जो वेदविरुद्ध, ऋषि–मुनियों व विद्वानों के आचरण से विरुद्ध तथा अपनी आत्मा के प्रतिकूल कार्य है उसे अनाचार या अधर्म कहते हैं। सत्विद्या और शील की पवित्र भूमि में ही सुख और शान्ति का सुमन विकसित होता है। जब कोई व्यक्ति अर्थ व काम के प्रलोभन में आकर धर्म विरोधी कार्य करता है उस समय वह स्वयं तो दुःख का पात्र होता ही है तथा अन्यों के भी दुःख का कारण बनता हैं।

विदेशगमन से आचार भ्रष्ट नहीं होता

यह अपने देश का दुर्भाग्य कहना चाहिये कि मध्यकाल में कुछ स्वार्थी, पाखण्ड एवं अज्ञानी लोगों ने इस सदाचार को–जो हमारी आत्मा एवं कर्त्तव्य से सम्बन्ध रखता है, जो आन्तरिक पवित्रता से सम्बन्ध रखता है–उसे बाह्य आडम्बर बनाकर देश के पतन में पर्याप्त योगदान दिया। उन स्वार्थी लोगों ने केवल अपनी जीविका व प्रतिष्ठा की सुरक्षा के लिये इस प्रकार का व्यर्थ का प्रतिबन्ध लगाया था उन्होंने कभी इस ओर नहीं विचार किया कि विदेश गमन में अंकुश लगाकर देश की भावी प्रगति में कितनी बाधा उपस्थित कर रहे हैं। स्वामी जी कहते हैं कि यदि हमारा किसी प्रकार का धर्म नहीं बिगड़ता और यदि विदेश न जाते हुये भी दुराचरण में लिप्त रहेंगे तो हमारा धर्म स्वतः भ्रष्ट हो जायेगा।

इससे बढ़कर और क्या विडम्बना होगी कि हम एक क्षुद्र घृणित नारी (वेश्या) के साथ सम्बन्ध करने अथवा मिथ्याभाषण, विश्वासघात आदि करने में तो अपना धर्म भ्रष्ट नहीं समझते लेकिन देशदेशान्तरों में जाकर वहाँ के श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषों से सम्पर्क करके अपनी

Scanned with CamScanner

विविध उन्नति की पृष्ठभूमि तैयार करने में अपना धर्म भ्रष्ट मानते हैं। ऋषिवर दयानन्द की यह अटल मान्यता है कि देशदेशान्तरों में जाकर वहाँ बिना व्यापार किये अपने देश की कभी उन्नति सम्भव ही नहीं है। यदि हम देश की आर्थिक, बौद्धिक, राजनैतिक व व्यावहारिक उन्नति करना चाहते हैं तो अन्य देशों के श्रेष्ठ पुरुषों से सम्पर्क करके उनके श्रेष्ठ ज्ञान व गुणों को अपनाना होगा। विदेशों की यात्राओं से अनेकशः लाभ होते हैं; वहाँ के अनेकों विद्वानों से सम्बन्ध बढ़ता है; वहाँ के रीति–नीति देखने का अवसर मिलता है। लोग निर्भय व शूरवीर बनने लगते है; उनके सद्विचारों से लाभ उंठाकर हमारी समृद्धि में विकास होता है। इस प्रकार के लाभप्रद विदेश सम्पर्क को पाप समझना अपनी उन्नति में बाधा उपस्थित करना है। यदि विदेशी लोगों के स्पर्श एवं दर्शन को धर्मभ्रष्टता समझने लगेंगे तो समय पड़ने पर उन लोगों के साथ युद्ध कैसे कर सकेंगे। हमारा इतिहास साक्षी है कि आर्यों ने अश्वमेध व राजसूय आदि बड़े–बड़े यज्ञ किये थे जिनमें अन्य देशों के निवासियों के साथ मैत्री सम्बन्ध भी स्थापित किये गये और युद्ध भी। अतः स्पष्ट है कि विदेशी लोगों के सम्पर्क मात्र से नहीं उनकी बुरी आदतों व भ्रष्ट आहारादि के सेवन से हमारा धर्म भ्रष्ट होता है।

यह एक आश्चर्य व दुःख की ही बात है कि हम संकीर्णताओं व बाह्य पाखण्डों की थोथी धर्म–रक्षा में ही फंसे रहे और असीम सागर को लांघकर आये अंग्रेज व मुसलमान दोनों हाथों से देश कि विपुल सम्पदा को लूट ले गये जो आज की आर्थिक अवनति का मूलाधार है। अतएव ऋषि ने ऐसी घातक व देश नाशक मान्यता का घोर विरोध किया और बताया कि आचरण तो आत्मा से सम्बन्ध रखता है। अतः इसे पवित्र बनाये रखते हुये देश–देशान्तरों की यात्रा करके वहाँ के नाना गुणों को अंपना कर हमें अपना सर्वतोन्मुखी

Scanned with CamScanner

विकास करना चाहिये।

ऋग्वेद के अन्दर आये 'अलक्ष्मीघ्न' आदि सूक्तों में स्पष्ट उल्लेख हैं कि समुद्र यात्रा से दारिद्र्य का नाश और ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। वर्तमान में भी हमारा देश रूस और अमेरिका आदि देशों के साथ करोड़ों व अरबों रुपये के माल का आदान प्रदान कर रहा है और अपनी गरीबी को समाप्त करने में संलग्न है। यदि हम पहले के समान ही आज विदेश गमन व विदेश सम्बन्ध को धर्मभ्रष्टता का कारण मान लें तो जो आज थोड़ी बहुत उन्नति हो रही है वह भी समाप्त हो जावें।

ऋषि दयानन्द ने व्यास–शुक, श्रीकृष्ण–अर्जुन, पाण्डु–माद्री के आख्यानों द्वारा इसी मान्यता को पुष्टि प्रदान की है कि हमारे आर्य लोग पहले भी देश देशान्तरों की यात्रायें करते थे एवं अपना व्यापार, राजकार्य अथवा परिभ्रमण द्वारा अधिकाधिक लाभ प्राप्त किया करते थे। आर्यों की धार्मिक मान्यतायें इतनी निर्बल एवं थोथी नहीं कि वे विदेशगमन या विदेशी व्यक्ति के स्पर्श वा दर्शन मात्र से भ्रष्ट हो जावें।

कच्चा और पक्का भोजन

देश की उन्नति में जहाँ और बहुत से व्यवधान माने जाते हैं उनमें से समाज में फैला भोजन सम्बन्धी पाखण्ड भी एक बहुत बड़ा व्यवधान रहा है। जो अन्न केवल जल आदि में पकाया जावे वह **कच्चाभोजन** है और जो घी व दूध आदि में पकाया जावे वह **पक्का भोजन** है। और **पक्का भोजन** तो अन्यों के हाथ का छुआ होने पर भी खाने में कोई दोष नहीं लेकिन **कच्चा भोजन** दूसरे के हाथ का छुआ नहीं खाना चाहिये। इस प्रकार की व्याख्या पाखण्ड मात्र है। घी दूध में पका स्वादिष्ट भोजन अधिक से अधिक खाने को प्राप्त होता रहे इसीलिये भोजनभट्टों या मतलब–सिद्धुओं ने इस प्रकार

Scanned with CamScanner

का कच्चा–पक्का का भेद किया था। वास्तविकता तो यह है कि अग्नि में भली भांति पका अन्न पक्का और न पका हुआ अन्न कच्चा होता है।

अपने हाथ की रसोई

ऋषि दयानन्द का चिन्तन प्रत्येक दिशा में बड़ा व्यावहारिक था। उनका कहना है कि यदि शास्त्रों का चिन्तन, मनन करने वाले ब्राह्मण व संन्यासी लोग अथवा राष्ट्र रक्षा हेतु युद्धादि में संलग्न क्षत्रियगण अपने हाथ से रोटी पकाने और चौका लगाने या बर्तन आदि साफ करने के प्रपंच में लग जायेंगे तब फिर विविध विद्याओं के अध्ययन, अध्यापन, राज्य पालन व पशुपालन, खेती और व्यापार आदि का कार्य कौन करेगा ? अतः आर्यों के यहाँ भोजन पकाने वाले शूद्र ही होने चाहिये क्योंकि वे शूद्र ही इस कार्य में दक्ष हो सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अपने–अपने नियत कार्यों में संलग्न रहकर अपना, समाज व राष्ट्र का विकास करें तथा शूद्र स्त्री–पुरुष इन द्विजों का भोजन पकाना आदि सेवा का कार्य करें–यही उचित है। आपस्तम्ब आदि धर्म–सूत्रों का भी यही आदेश है कि आर्यों के घरों में शूद्र (अर्थात् जो प्रयत्न करने पर भी ज्ञानार्जन न कर सकें ऐसे) स्त्री पुरुष भोजन आदि पका कर सेवा करें। हाँ, इतना अवश्य ध्यान रहे कि भोजन पकाने वाले ये शूद्र लोग शरीर व वस्त्रादि से अपवित्र न हों। यदि ब्राह्मण भी अपवित्र रीति से भोजन पकावे तो उसके भी हाथ का भोजन नहीं खाना चाहिए क्योंकि शरीर की अपवित्रता व अशुद्ध पद्धति से पकाया गया भोजन दूषित हो जायेगा जो हमारे स्वास्थ्य को खराब कर सकता है। यदि शूद्र के हाथ का भोजन करने में पाप समझेंगे तो हमें गुड़, चीनी, घृत, दूध शाक, फल आदि का भी सेवन नहीं करना चाहिये क्योंकि शूद्र, चमार, मुसलमान, ईसाई सभी लोग गुड़ आदि बनाते हैं और इन पदार्थों

Scanned with CamScanner

के खाने में किसी को भी कोई आपत्ति नहीं होती। अतः शूद्र के हाथ का भोजन करने में कोई दोष नहीं होता।

चौके में बैठकर भोजन करना

भोजन पकाने वाले व्यक्ति की स्वच्छता के साथ–साथ स्थान की भी स्वच्छता नितान्त आवश्यक है। इसके विपरीत दुर्गन्धपूर्ण स्थान में भोजन करने से मन की प्रसन्नता तो दूर पहले से खाये गये पदार्थ की उल्टी (वमन) होने की आशंका रहती है। जैसे कि मियाँ जी की रसोई का चित्र खींचते हुये स्वामीजी लिखते हैं कि–कहीं जूठी रकेबी और कहीं हाड़–गोड़ पडे रहते है और मक्खियों का तो कहना ही क्या ? इस प्रकार का वीभत्स स्थान श्रेष्ठ पुरुषों के भोजन के लिये कैसे उपयुक्त हो सकता है। इसलिये चौके को यथाशक्ति शुद्ध, स्वच्छ रखने का प्रयत्न करना चाहिये।

लेकिन यदि किसी आपत्ति अथवा परिस्थिति विशेष में इस सामान्य व्यवस्था का उल्लंघन हो जावे तो धर्मभ्रष्टता की आशंका नहीं करनी चाहिये। जैसे कि युद्धादि के अवसरों पर क्षत्रिय लोग घोड़े आदि पर बैठे–बैठे ही भोजन करते हैं जो उस समय में उचित भी है। उस विपत्ति के समय योद्धाओं का एक हाथ में रोटी और दूसरे हाथ में शस्त्र धारण करना ही परमधर्म है। महाभारत के युद्ध काल में योद्धा लोग इसी प्रकार भोजन करते थे। अतः विशेष परिस्थितियों में सामान्य नियम का अतिक्रमण हो ही जाता है ऐसी दशा में स्वयं को धर्मभ्रष्ट नहीं समझना चाहिये।

भक्ष्य और अभक्ष्य

भारतीय मनीषियों ने आहार के सम्बन्ध में बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है। उनके अनुसार भोजन दो प्रकार का होता है एक **भक्ष्य** और दूसरा **अभक्ष्य**। जो अहिंसा, धर्मादि कार्यों से प्राप्त हो वह **भक्ष्य** तथा जो हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल कपट आदि से प्राप्त हो वह

Scanned with CamScanner

अभक्ष्य कहाता है। किसी भी भोजन के निषेध के दो कारण होते हैं–एक वैद्यक सम्बन्धी कारण और दूसरा आचार सम्बन्धी कारण। शुद्ध, पवित्र दुग्ध स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होते हुए भी यदि चोरी का है तो त्याज्य है और विष, मांस, मदिरा, चोरी का न होते हुये भी अग्राह्य है पहली अवस्था आचार-शास्त्र से सम्बन्ध रखती है और दूसरी वैद्यक शास्त्र से।

महर्षि दयानन्द ऐसे अभक्ष्य पदार्थ को सर्वथा त्याज्य बताते हुये दुग्ध, घृत, फल शाकादि शुद्ध सात्विक पदार्थों के सेवन का आदेश देते हैं क्योंकि उनकी भी प्राचीन ऋषि मुनियों के समान दृढ़ मान्यता थी कि–आहार की शुद्धि से सत्त्व की शुद्धि और सत्त्व–शुद्धि से स्मरण शक्ति निश्चल होती है; लेकिन अशुद्ध आहार से सत्त्व और स्मृति तो अशुद्ध होती ही है साथ ही मृत्यु की भी आशंका हो जाती है। अतएव आर्यों का आहार धार्मिक एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप चार कसौटियों में कस कर निर्धारित किया गया है–

1. जो आहार आयु, बल, रूप, क्रान्ति और बुद्धि की वृद्धि करने वाला हो।
2. जिस आहार की प्राप्ति में किसी प्राणि के भोगों और आयु में विघ्न उत्पन्न न हो।
3. जो आहार बिना किसी कष्ट के केवल अपने ही **अगर्हित** कर्मों से उत्पन्न हुआ हो।
4. जो आहार मोक्ष प्राप्ति में सहायक हो।

ऐसा भोजन ही आर्यों का भोजन हो सकता है अन्य नहीं।

त्रिविध भोजन

पहले प्रकार का सात्विक भोजन होता है जिसमें फल व दुग्धादि की गणना होती है। कुछ लोग यह कहते हैं कि फलों के खाने व दुग्धादि के सेवन से भी हिंसा होती है जैसा कि मांसाहार से हिंसा

Scanned with CamScanner

होती है। अतः मांसाहार दुग्धाहार दोनों एक समान हैं। लेकिन ऐसा समझना भ्रान्ति मात्र है। प्रत्येक स्त्री जाति के प्राणियों में अपनी सन्तान के लालन–पालन के लिये परमपिता परमात्मा उनके खाये भोजन का सूक्ष्म रूप, दूध पैदा कर देता है और उस दूध को पिलाते समय माताओं को कष्ट होना तो दूर अपितु प्रसन्नता ही होती है। अतः दूध लेने में किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती जब कि मांस बिना हिंसा के किसी प्रकार से भी नहीं प्राप्त किया जा सकता।

इसी भांति गौओं को दुधारू बनाकर उनसे थोड़ा–थोड़ा दूध लेने से हिंसा नहीं होती, क्योंकि जितना दूध बच्चों को आवश्यक है उतना उनको पिलाने के बाद अपने प्रयास से बढ़ाये गये दूध को लेने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

दूसरे प्रकार के राजस भोजन में अन्न जब शाकादि की गणना होती है। गेहूं जौ चना धान आदि अन्न जब पूर्णतया पक कर अपने वृक्ष (शरीर) से टूट कर जमीन में गिरने लगते हैं ऐसे उन पके अन्नों को ग्रहण करने में उन वृक्षों को जरा सा भी कष्ट नहीं होता। जैसे कि अपने पके नाखूनों व केशों के काटने में हमें जरा भी कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार गाजर–मूली आदि वनस्पतियों में पशुपक्षियों व मनुष्यों की भाँति चेतन–ज़ीव नहीं रहता, इसमें चेतना सुषुप्त दशा में रहती है जिसके फलस्वरूप सोचने–समझने, सुख–दुःख अनुभव करने की क्षमता इन वनस्पतियों में नहीं होती। अतएव वनस्पतियों के काटने व जोड़ने में इन्हें दुःख नहीं होता।

एक तीसरे प्रकार का तामस भोजन होता है, जिनमें मांस, अण्डा, मदिरा आदि की गणना की जाती है। इस प्रकार के तामस अन्नों के विषय में मनुस्मृति आदि शास्त्रों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि–मांस और मद्य राक्षसों व पिशाचों के अन्न हैं, आर्यों के नहीं। अतएव आर्यों के लिये मांस, मदिरा आदि हिंसा रूप तामस आहार

Scanned with CamScanner

सर्वथा त्याज्य माना है।

शरीर का शत्रु मांसाहार

ऋषि दयानन्द ने ऐसे तामस आहार को अभक्ष्य बताकर किसी भी दशा में न खाने का आदेश दिया है क्योंकि इनके सेवन से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, अनेकानेक रोग पैदा हो जाते हैं और असमय में ही मृत्यु का भी ग्रास बनना पड़ता है। आज विश्व के सभी स्वास्थ्यशास्त्री इस विषय में एकमत हैं कि शरीर का सबसे बड़ा शत्रु मांस, मदिरा का सेवन है क्योंकि यह मांसाहार अपेंडीसाइटीज, कैंसर, गठिया आदि विविध रोगों का जनक है। इस सम्बन्ध में माननीय डॉ. हेग की निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय है—"मांस भक्षण सुस्ती लाता है क्योंकि इसके कारण मस्तिष्क, मांसपेशियों, हड्डियों तथा सारे शरीर में रक्त का प्रवाह मन्द और न्यूनता के परिणामस्वरूप स्वार्थपरता लोलुपता, भीरुता, अधःपतन, ह्रास और अन्त में विनाश निश्चित है"। इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान रहे कि मांस और मदिरा का भाईचारा है। मांस खाने पर मदिरा की इच्छा होता है और मदिरा सेवन के बाद मांस की आवश्यकता होती है। यह मांस भी अफीम, कोकिन और शराब की ही भाँति उत्तेजक होता है। निरन्तर इन उत्तेजक पदार्थों के सेवन से स्नायु इतने निर्बल हों जाते हैं कि जीवन से निराश होकर मनुष्य अन्त में आत्मघात करने के लिये बाध्य हो जाता है। आत्महत्या करने वालों में मांसाहारियों की ही संख्या अधिक पायी गई है।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि मांसाहार शक्तिवर्धक होता है लेकिन इतिहास और अनुभव इस बात का साक्षी है कि मांसाहारी कुछ समय के लिये भले ही मोटा ताजा और स्वस्थ दिखाई दे लेकिन कठोर से कठोर श्रम करने की क्षमता केवल शाकाहारी में ही होती है। ऋषिवर दयानन्द की आश्चर्यजनक अपरिमित शक्ति

Scanned with CamScanner

इसका ज्वलन्त उदाहरण है। शाकाहार और दुग्धाहार ने शक्तिशाली घोड़ो से भी अधिक शक्ति उनके शरीर में भर दी थी कि एक राय साहब की बग्घी के घोड़े एक–एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सके।

मांसाहार मनुष्य का अस्वाभाविक भोजन

मनुष्य की शारीरिक संरचना इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उसका स्वभाविक आहार फल–फूल व दुग्धादि ही है। लेकिन जिह्वा की बुरी आदत ने मनुष्य को पशु से भी नीचे गिरा दिया है। जो घास खाने वाले पशु हैं वे भूखे मर जाते हैं लेकिन मांस नहीं खाते। इसी प्रकार मांसाहारी फल–फूल आदि की ओर देखते तक नहीं। किन्तु मनुष्य एक ऐसा विलक्षण प्राणी है जो घास–पात, फल–फूल, दूध, अन्न और मांस मदिरा सभी कुछ उदरस्थ कर लेता है। भोजन के आधार पर स्थलचर पशुओं के तीन भेद हैं– (1) मांसभक्षी–बिल्ली, कुत्ता, शेर आदि। (2) वनस्पतिभक्षी–गाय, बैल, भैंस, आदि और (3) फलभोगी – बन्दर, वनमानुष आदि।

इसमें मनुष्य के शरीर की रचना फलभोगी बन्दर आदि के शरीर से मिलती है। जो मांसाहारी पशु होते हैं वे जीभ से पानी पीते हैं, दातों से मांस काटते हैं, उनका मेदा छोटा और गोल होता है, भोजन नलिका छोटी होती है लेकिन मनुष्य के व्यवहार, दांतों की बनावट एवं भोजन–नलिका आदि उन मांसाहारियों से भिन्न है। मनुष्य की भोजन नलिका अन्य शाकाहारियों के समान बहुत लम्बी (उसके शरीर से बारह गुनी) होती है।

मनुष्य का यह स्वाभाविक भोजन दूध और फल मुख्यरूप से गौ आदि पशुओं एवं आम आदि वृक्षों से प्राप्त होता है. इसीलिये भारतीय संस्कृति में गोवध व फल वाले वृक्षों के काटने को पाप मानते हैं। ऋषिवर दयानन्द ने स्पष्ट रूप से बताया है कि गौ आदि परम उपयोगी पशुओं का वध जघन्य अपराध है। एक गाय अपनी

Scanned with CamScanner

एक पीढ़ी द्वारा 457600 मनुष्यों का पालन करती है तथा एक बकरी 35920 मनुष्यों को दूध पिलाकर पालन करती है। अतः ऐसे उपकारक पशुओं की न तो स्वयं हत्या करनी चाहिये और न दूसरों को मारने देना चाहिए।

मांसाहार के पक्षधर एक यह तर्क देते हैं कि यदि इन पशुओं की हत्या न की जावे, सभी मनुष्य अहिंसक हो जावें तो व्याघ्रादि हिंसक पशु इतने बढ़ जायेंगे कि वे ही गौ आदि पशुओं को मार खायेंगे। ऐसी दशा में हमारी अहिंसा नीति व पशुओं की सुरक्षा के निमित्त किया गया पुरुषार्थ व्यर्थ हो जावेगा। इसका समाधान करते हुये ऋषि ने लिखा कि हानि कारक पशु अथवा मनुष्यों को दण्ड देने का कार्य राजपुरुषों का है, वे दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें। **इससे भलीभांति जाना जा सकता है कि स्वामी दयानन्द शौकिया शिकार के भी विरुद्ध थे।** आगे स्वामी जी लिखते हैं प्राण वियुक्त पशु का मास चाहे फेंक दें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें या जला देवें। अथवा यदि कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।

मांसाहार से होने वाली हानियों को यदि हम सूत्ररूप में प्रदर्शित करना चाहें तो निम्न हैं:–

1. मांसाहार अमानुषीय, अस्वाभाविक, अहितकर एवं अनावश्यक है।
2. दूध फल आदि की तुलना में यह कम पुष्टिकारक है।
3. आयु को घटाने वाला है।
4. विभिन्न प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का कारण है।
5. यह स्वार्थपरता, लोलुपता, अवनति, ह्रास तथा विनाश की जड़ है।
6. इसके कारण शराब पीने की बुरी व विनाशकारी आदत को

Scanned with CamScanner

प्रोत्साहन मिलता है।

7. इससे गौ आदि उपकारी एवं निरपराध पशुओं की हिंसा होती है और निरन्तर बढ़ रही पशुहिंसा से देश में दुग्ध घृतादि पौष्टिक पदार्थों का अभाव होता जा रहा है।
8. मनुष्य के अन्दर क्रूरता व बर्बरता पैदा करने वाला है।

इस उक्त विवेचन के आधार पर हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि मनुष्यों को शुद्ध, पवित्र, सात्विक दुग्धादि आहार का ही सेवन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त मांस, मदिरा आदि बुद्धिविनाशक, अभक्ष्य पदार्थों का सर्वथा परित्याग करना चाहिये।

आर्यों का सम्मिलित भोजन

प्रीतिभोज अर्थात् एक साथ एक स्थान में बैठकर भोजन करने से प्रेम भावना व एकता में वृद्धि होती है—यह एक व्यावहारिक सत्य है। इससे अनेकों बिछड़े हृदय एक हो गये— इसके अनेक उदाहरण देखने व पढ़ने को मिलते हैं। वेद भगवान् भी यही आदेश करते हैं कि हम मनुष्यों का भोजन एक साथ हो। ऋषि दयानन्द भी इसी सत्य का कथन करते हुये लिखते हैं कि आर्यों का भोजन सम्मिलित होना चाहिये। शुद्ध भोजन को एक साथ अपनी—अपनी थालियों में खाने में किसी प्रकार का दोष नहीं है। महाभारत में महाराज युधिष्ठिर के 'राजसूय यज्ञ' में समस्त भूमण्डल के राजा, ऋषि और महर्षि आये थे और एक ही पाकशाला में भोजन किया करते थे।

लेकिन इस प्रकार के सम्मिलित भोजन या केवल खाना पीना एक होने से ही देश का सुधार नहीं हो सकता। जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है। "आपसी फूट से कौरव—पाण्डवों और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा हुआ है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को

Scanned with CamScanner

इ वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा"–इन पंक्तियों द्वारा ऋषि के हृदय की वेदना प्रकट होती है। आर्य राष्ट्र की अवनति से ऋषि को कितना दुःख है क्या रूढ़िवादी संन्यासी महन्त और पण्डित पुजारी इस पर ध्यान देंगे ? आज के राजनेता जो सर्वभक्षी बन कर औरों को भी इसी मार्ग पर लाना चाहते हैं क्या वे विचारेंगे कि खान–पान की एकता मात्र से काम नहीं चल सकता ?

एकता का सूत्र

महर्षि दयानन्द सामाजिक या राष्ट्रीय एकता के अतिरिक्त सार्वभौम एकता के अभिलाषी थे। उन्होंने लिखा है कि–"जब भूगोल में एक वेदोक्त मत था, उसी में सबकी निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख–दुःख, हानि–लाभ आपस में अपने समान समझते थे तभी भूगोल में सुख था"। जब तक हम मनसा वाचाकर्मणा एक नहीं होंगे, स्वार्थवृत्ति का त्याग कर दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझने का प्रयत्न नहीं करेंगे तब तक सुख शान्ति का एक स्वप्न है। आज देश में अशान्ति और दुःख दारिद्र्य का कारण विभिन्न मत–मतान्तरों का प्रचार है। हमें समस्त मत–मतान्तरों को वैदिक धर्म के अन्दर समाविष्ट कर एकमात्र वेद के मार्ग का आश्रय लेना होगा और उसकी बताई शिक्षा के आधार पर देश के निवासियों में सत्याचरण, प्रकृति के अटल नियमों का अनुसरण, शौर्य, दीक्षा, तप, ब्रह्म–सदाचार व ज्ञान और यज्ञ–इन दिव्य गुणों के प्रति रुचि पैदा करनी होगी, तभी हम अपने राष्ट्र व समाज को स्वाधीन और सुरक्षित रख सकते है। इस समुल्लास में ऋषिवर ने यही शिक्षा प्रदान की है।

सम्पर्क – 9029421718

Scanned with CamScanner

हमारा प्रिय सत्यार्थप्रकाश

(1)

हमारे गुरु का आशीर्वाद, हमारे ऋषि का अमर विधान ।
मिटाकर जग का विषम विषाद, करेगा वही विश्व–कल्याण ।।
इष्ट फल देगा नित्य नवीन, कल्पपादप का पुष्पाभास ।
करे वह असत्–विचार विहीन, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

(2)

निगम का आगम का अवतार, भव्य भावों का भुवि भण्डार ।
प्रेम के पथ का पारावार, ज्ञान का गुण का रम्यागार ।।
चमकते जिसमें रत्न अनेक, नित्य प्रति पाते विविध विकास ।
सत्य का सागर बस वह एक, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश"।।

(3)

विविध पंथों का तामस तोम, भरा था भू पर भ्रम भरपूर ।
अखिल आच्छादित था वर व्योम, न कर सकता था कोई दूर ।।
गगन में हुआ ज्ञान विस्फोट, किया अज्ञान अंधेरा नाश ।
असत् पर मारी भारी चोट, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

(4)

किया द्रुत खण्ड खण्ड पाखण्ड, चलाकर तेज तर्क का तीर ।
आक्रमण हुआ प्रभूत प्रखण्ड, दम्भगढ़ गिरा सहित प्राचीर ।।
विलखते हैं मतवादी आज, करें कैसे किसकी अब आश ।
असत् पर गिरा गर्ज कर गाज, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश ।।

(5)

"सूर्य" में रहे रश्मियाँ सात, यहाँ चौदह पूरे उल्लास ।
"सूर्य" करता न प्रकाशित रात, सतत यह देता ज्ञान प्रकाश ।।
"सूर्य" पर छाते घन बरसात, ग्रहण में होता भारी ह्रास ।
किन्तु "सत्यार्थ" सदा अभिजात, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

-: रचयिता :-

(डॉ० सूर्यदेव शर्मा शास्त्री, साहित्यालंकार, एम. ए. डी. लिट्,)

अजमेर

Scanned with CamScanner

सुन्दर, साहित्य और सस्ते साहित्य प्रचार की योजना में सहयोग दीजिए

आर्य समाज अजमेर के निष्ठावान् विद्वान् डॉ. सूर्यदेव जी की 22 हजार रूपयों की उदार सहायता के कारण आर्यसमाज अजमेर ने 50 हजार रुपये व्यय करके सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के 15 भागों की 75 हजार प्रतियां (प्रथम संस्करण), लागत से भी कम मूल्य पर वितरित की हैं।

क. इसी ग्रन्थमाला के समान ऋषि दयानन्द तथा वैदिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में हिन्दी अंग्रेजी ट्रेक्सट।

ख. स्वामी जी के पत्र व्यवहार पर आधारित उनके कार्य और विचारों का संकलन।

ग. आर्य समाज अजमेर के गत 100 वर्षों का इतिहास जिसमें ऋषि दयानन्द के अन्तिम वर्षों से सम्बन्धित समाज के अभिलेखों से प्राप्त विवरण।

उपर्युक्त एवं आवरण पृष्ठ संख्या 2 पर लिखित साहित्य के प्रकाशन में आर्थिक सहायता देने वाले सज्जनों के संबंध में प्रत्येक पुस्तक में निम्न प्रकार से उनके प्रति आभार व्यक्त किया जावेगा।

* पाँच सौ रुपये से एक हजार रुपये तक दान देने वालों के नाम का उल्लेख।
* एक हजार रुपये से तीन हजार रुपये तक देने वाले दान दाताओं का संक्षिप्त परिचय।
* तीन हजार रु. से ऊपर देने वाले दान दाताओं का चित्र और परिचय।

दयानन्द शोध पीठ के प्रकाशन

दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज में दयानन्द शोध पीठ की स्थापना हो चुकी है। प्रति वर्ष उसकी ओर से नियमित रूप से महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों पर महत्त्वपूर्ण शोध तथा उपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जा रहा है।

	इसका उद्धृत साहित्य निम्न प्रकार है :–	मूल्य
1	महर्षि दयानन्द पत्रों के दर्पण में	50.00
2	नासीद सृष्टि विज्ञान एवं दशवाद रहस्य	
3	त्रयी विद्या	
4	सार्वभौम वैदिक धर्म	
5	महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं की प्रासंगिकता	

प्राप्ति स्थान – **आर्य समाज, अजमेर**

Scanned with CamScanner